ISSN: 2349-4654
नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक वर्ष : 7, अंक-1, अप्रैल 2019

मणिपुर प्रदेश में प्रचलित प्रमुख संगीत विधाएँ

सुंदर सिंह
शोधार्थी, संगीत विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

Paper recieved on : May 01, 2019, Return : May 27, 2019, Accepted : June 10, 2019

सार-संक्षेप

मणिपुरी परम्पराएँ, फिर चाहे वो सांगीतिक हों या करम कांड संबन्धित; इनके मार्गदर्शक गुरुजन रस्म और रिवाजों के पालन के प्रति बड़े सजग रहे। यही कारण है कि प्रदेश में सांगीतिक शैलियों की भरमार देखने को मिलती है व हर एक शैली दूसरी से भिन्न है। किसी एक शैली में दूसरी की छाया तक नजर नहीं आती। दो ऐसी संगीत विधाएँ प्रदेश में प्रचलित हैं जिनकी वजह से प्रदेश पूरे विश्व में अलग पहचान रखता है। इनमें से एक है रास लीला नृत्य और दूसरी है नटसंकीर्तन परम्परा। उक्त दोनों सांगीतिक शैलियाँ अपनी उच्च स्तरीय कलात्मकता एवं शास्त्रीय नियमों पर आधारित होने के कारण शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत आती हैं। जहाँ शास्त्रीय संगीत की विशेषता है कि वह उच्च बौद्धिक क्षमताओं से उपजा संस्कारित संगीत होता है जिसे समझने और आनंद उठाने के लिए विशेष नियमों का ज्ञान होना अति आवश्यक है वहीं दूसरी ओर प्रदेश के साधारण जन मानस जो भले ही ज्यादा शिक्षित न हों और न ही शास्त्रों व नियमों का ज्ञान रखते हों; वह भी अपने स्तर पर संगीत का आनंद उठाते हैं व यह संगीत लोकसंगीत के तौर पर जाना जाता है। मणिपुर प्रदेश की लोक सांगीतिक परम्परा भी अपने आप में बहुत स्मृध है जो प्रदेश में वास करने वाली विभिन्न जातियों एवं जनजातियों की पूर्ण संस्कृति को अपने में सँजोये हुये है। प्रस्तुत शोध-पत्र को लिखने के लिए माध्यमिक स्रोतों को आधार बनाया गया है।

मुख्य शब्द : मणिपुर, लोक संगीत, नट-संकीर्तन, रासलीला, जनजातियाँ

शोध-पत्र

अगर हम मणिपुर प्रदेश में प्रचलित विभिन्न संगीत विधाओं को शास्त्रीय एवं लोक संगीत के अंतर्गत बांटें तो यहाँ की सर्वाधिक लोकप्रिय नृत्य शैली रास लीला है जिसे भारत की प्रमुक्ख शास्त्रीय नृत्य शैलियों में स्थान प्राप्त है, शास्त्रीय संगीत ले अंतर्गत आती है, परंतु रास लीला नृत्य अचानक से अस्तित्व में नहीं आ गया, इसके पीछे भी स्थानीय लोक संगीत का पुट रहा है व प्रदेश के वैष्णव मत अनुयाइयों में प्रचलित नट संकीर्तन परम्परा के आधार, उसी से प्रेरणा पा कर यह नृत्य शैली अस्तित्व में आयी है। रास लीला जिसने आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मणिपुरी शास्त्रीय नृत्य के नाम से अपनी अलग पहचान हासिल कर ली है, नट संकीर्तन से ही विकसित होकर बनी है पर फिर भी नट संकीर्तन सिर्फ मणिपुर प्रदेश तक ही सीमित होकर रहा और रास लीला के समान पहचान हासिल नहीं कर पाया पर 'युनेस्को की अंतर सरकारी कमेटी द्वारा बाकू में हुई 4 दिसम्बर 2013 की बैठक में मणिपुरी नट संकीर्तन को मानवीय विरासत के अमूर्त प्रतिनिधियों की सूची में अंकित कर दिया गया है।'[1] संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली द्वारा भी नट संकीर्तन को भारतीय संगीत की मुख्य परंपरागत धारा में शामिल कर लिया गया इसलिए आज कलात्मक प्रस्तुति के रूप में संकीर्तन के ही कुछ अंशों को मनोरंजनार्थ पुंग चोलोम और ड्रम डांस आदि के रूप में पेश किया जाता है जिस से नट संकीर्तन विधा को जानने के प्रति संगीत जीवियों में जागृति आई है। अत: रास लीला के बारे में जन ने से पहले नट संकीर्तन के विषय में जान लेना परम आवश्यक है, इसलिए पहले नट संकीर्तन का संक्षिप्त विवरण एवं विशेषता कुछ इस प्रकार है:

नट संकीर्तन

नट संकीर्तन प्रदेश के हिन्दू सम्प्रदाय में प्रचलित एक संकीर्तन परम्परा है। संकीर्तन को गौड़ वैष्णव जनों द्वारा प्रार्थना और भक्ति का महायज्ञ स्वरूप समझा जाता है। इसका आधार श्री गौरांग चैतन्य महाप्रभू द्वारा संस्थापित एवम संचालित हरि नाम संकीर्तन मत है।' मणिपुरी वैष्णव विचारधारा के अनुसार नटसंकीर्तन लगभग पाँच घंटे लगातार चलने वाला महायज्ञ होता है जिसमें सामूहिक रूप से संगीत द्वारा प्रार्थना एवम भजन बंदगी की जाती है और बहुत सारे कर्म कांड और विधिविधान सहित हरि महिमा का गुणगान एवम नाम जप किया जाता है। इसकी पेशकारी नाट्य शास्त्र के नियमों के अनुसार पूरी की जाती है।'[2] नटसंकीर्तन एक चकोर मंडप में किया जाता है जिसमें आमतौर पर सौलह या आठ कलाकार और दो पुंगवादक एक गोल घेरा बनाकर इसे पेश करते हैं। कलाकारों की भूमिका के अनुसार उन्हें अलग-अलग नाम से पुकारा जाता है जैसे की मुख्य गायक को इसयिहानबा, उसके सहयोगी गायकों को दोहार, पुंगवादकों को पुङ्ग्याइबा और इस पूरे समूह को पला कहा जाता है।

नट संकीर्तन के अपने निर्धारित नियम होते हैं जिनके अंतर्गत अलग-अलग कर्मकांडों की लड़ी के साथ साथ अलग-अलग तालों में अलग-अलग गीतों का गायन और वादन एक साथ चलता रहता है जो पुंग और गायन के अलग-अलग रागों पर निर्धारित होता है। प्रदेश का प्रचलित नृत्य पुङ्गचोलोम असल में नटसंकीर्तन परम्परा का ही एक महत्त्वपूर्ण अंग है जो देखने में इतना आकर्षक होता है की वर्तमान समय में एक नृत्य प्रस्तुति और प्रदेश की पहचान के रूप में मनोरंजनात्मक कलाकृति के तौर पर प्रचलित है।

मणिपुर प्रदेश में संकीर्तन की शुरुआत से लेकर अंत तक के स्थापित स्वरूप तक पहुँचने के लिए समय समय पर विद्वानों द्वारा नवीन प्रयोग किए गये जिसके फलस्वरूप संकीर्तन के अलग-अलग ढंग या प्रकार अस्तित्व में आए। जिनमें पुंग एवं करताल वादकों की संख्या, विषयवस्तु, पुंग एवं उसके बोलों की सरंचना एवं समय सिद्धान्त के अलग-अलग नियम निर्धारित किए गये। नटसंकीर्तन के इन प्रकारों को ध्रुमेल या अष्टकाल संकीर्तन के तौर पर भी जाना जाता है।' ध्रुमेल के मुख्यता चार प्रकार हैं—'महा ध्रुमेल, नित्यि ध्रुमेल, गौड़ ध्रुमेल और देवी ध्रुमेल।'[3] आमतौर पर होने वाले संकीर्तन में 8 से 16 कलाकार नट संकीर्तन को लगभग पाँच घंटों की अवधि में पूर्ण करते हैं जबकि ऊपर बताए गये अन्य संकीर्तन प्रकारों में महायज्ञ को पूर्ण करने में चौबीस घंटे से लेकर तीन दिन का समय भी लगता है।

नट संकीर्तन की पेशकारी और कर्म कांडों के निर्वाह के आधार पर कुछ विशेष एवम रोचक तथ्य सामने आते हैं जो इस प्रकार हैं—

यज्ञ का इतिहास हमारी आर्यन सभ्यता से जुड़ा हुआ है जिसके सबसे प्राचीन एवम प्रमाणित ग्रंथ वेद हैं जिनमे उस समय में प्रचलित संगीत एवम विधान के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। ऋग्वेद काल से ही यज्ञ के अवसर पर मंत्र उच्चारण साम गान के रूप में किया जाता था। साम गान प्रणाली के अनुसार साम की शुरुआत ओम स्वर से की जाती थी जिसका उच्चारण ऋषि मुनि एकसाथ समूह में मिलकर करते थे। मुख्य गायक के पीछे उपगायकों का स्थान हुआ करता था जिनकी संख्या कम से कम तीन और ज्यादा से ज्यादा छः होती थी। उपगायक निरन्तर ओम स्वर का उच्चारण करते थे जिस से मुख्य गायक को आधार स्वर प्राप्त होता रहता था। इस क्रिया से गायन की सुन्दरता में भी वृद्धि होती थी। मणिपुर प्रदेश में प्रचलित नट संकीर्तन परम्परा जिसको वैष्णव संप्रदाय में महा यज्ञ स्वरूप माना जाता है, में भी कुछ इसी तरह का प्रयोग देखने को मिलता है। जिसमें एकसाथ मिलकर सामूहिक रूप से निर्धारित भक्तिमय काव्य का गायन किया जाता है और मुख्य गायक जिसको इसयीहानबा कहते हैं का सहयोग उसके सहयोगी कलाकार करते हैं जिनको दोहार कहा जाता है। नट संकीर्तन के शुरुआती भाग, राग आहवाहन के समय से ही इसकी स्पष्ट झलक देखि जा सकती है जिस दौरान मुख्य गायक काव्य या गीत के बोलों को गाता हुआ जिस स्वर पर ठहराव कर्ता है उसी स्वर का उच्चारण उसके सभी सहयोगी कलाकार एकसाथ मिलकर करते हैं जो वापिस आती हुई ध्वनि जैसा प्रतीत होता है व पूरा मंडप इस ध्वनि से गूंज उठता है। इस क्रिया से मुख्य गायक को आधार स्वर प्राप्त होता रहता है।

वैदिक साहित्य से पता चलता है की उस युग में धार्मिक के अलावा कुछ लौकिक अवसरों पर भी यज्ञ के साथ भिन्न भिन्न साम गीतों का गायन किया जाता था। इसी तरह मणिपुर में भी वैष्णव संप्रदाय के लोग जन्म, मरण, मुंडन एवम विवाह आदि अवसरों पर संकीर्तन का आयोजन करते हैं इसलिए संकीर्तन केवलमात्र मंदिरों की धार्मिक परिधि तक ही सीमित नहीं है बल्कि स्थानीय सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग है। ज्ञातव्य है की संकीर्तन में प्रयोग होने वाले रागों, गीतों और तालों का प्रयोग भी आयोजन के अवसरों के अनुसार अलग-अलग होता है।

वैदिक काल में साम गान का गायन कुछ विशेष छंदों में किया जाता था और उन्हीं छंदों के नाम से ही साम प्रचलित हो जाते थे। ठीक इसी प्रकार मणिपुर में पुंग पर बजाए जाने वाले राग प्रभन्धों के नाम भी उनके साथ गाये जाने वाले गीतों के नाम पर पाये जाते हैं। जैसे की 'ब्रह्म ताल के अंतर्गत अन्य तालों के मिश्रण से तैयार रचना का प्रयोग निरतंति बिपिन या देखागौड़ शब्दों के साथ शुरू होने वाली पदावली के साथ जब पहली बार किया गया तो इस ताल प्रबंध का नाम ब्रह्म ताल के बजाय निरतंति बिपिन या देखागौड़ नाम से प्रचलित हो गया।[4]

वैदिक काल में हुये स्वरों के विकास क्रम से पता चलता है की ''उस समय साम गान तीन स्वरों में होता था जो अवरोही क्रम में थे और जिनकी आवाज क्रमशः ऊपर से नीचे की और आती थी अतः यह क्रमशः गं, रें और सं थे।''[5] अगर उल्लेखित गां, रे, सां स्वर वाकई तार सप्तक के माने जाएँ तो मणिपुरी नट संगीत में भी यह स्पष्ट देखा जा सकता है की नट गायक तार सप्तक या ऊँचे स्वरों का ही अधिक प्रयोग करते हैं। नट संकीर्तन सुनते हुये कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि गायकों का आधार स्वर मध्य सप्तक में न हो कर तार सप्तक में स्थित हो। गायन के दौरान भी अवरोही क्रम का बाहुल्य देखने को मिलता है। संगीत मकरंद में गांधार ग्राम का उल्लेख मिलता है। इस ग्राम की शुरुआत ही गांधार या पंचम स्वर से मानी जाती है और कहा जाता है की इस ग्राम को गाना सरल नहीं था क्योंकि इसके स्वर तार सप्तक से शुरू होते थे और साधारण मानवीय कंठ की क्षमता से बाहर थे।[6] मणिपुरी नट संकीर्तन शैली में कुछ इसी प्रकार बहुत ऊँचे स्वरों में गायन वादन पेश करते हैं जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है के जैसे गांधार ग्राम का प्रयोग कर रहे हों एवं गांधर्वों की तरह ही गायन, वादन, नृत्य एवं नाट्य का सुमेल पेश करते हैं। इस लिए संकीर्तन की इस शैली में संकीर्तन की और शैलियों की तरह केवल गायन की प्रधानता नहीं है और न ही अन्य संकीर्तन विधायों की तरह केवल पालथी लगाकर गायन किया जाता है।

महाभारत काल में शडज और मध्यम ग्राम के अलावा गंधार ग्राम का भी विशेष तौर पर प्रचलन था। हरिवंश पुराण में गांधर्व का विशेष रूप में वर्णन मिलता है जिसके अंतर्गत गायन, वादन एवम नृत्य; तीनों कलाओं का समन्वय है। पांडव अर्जुन संगीत के इन तीनों अंगों में दक्ष थे और

उन्होंने अपने अज्ञात वास के दौरान ब्रहनल्ला के रूप में राजा विराट की पुत्री को संगीत की व्यावहारिक एवम शास्त्रीय पक्ष की शिक्षा भी दी थी। गौर करने योग्य है की 'महाभारत के महान धनुर्धारी अर्जुन की पत्नी चित्रांग्दा मणिपुर की ही रहनी वाली थी।'[7] इस प्रकार मणिपुर प्रदेश प्राचीन काल से ही सांगीतिक धरोहर का सरंक्षण करता आया है। यही कारण है की आधुनिक समय में भी यहाँ के निवासियों ने अपनी संस्कृति और कलाओं की विलक्षनता को कायम रखा है।

यजुर्वेद में वर्णित उल्लेखों से पता चलता है की उस समय तक नृत्य और नाट्य की कला का प्रचलन भी हो चुका था। नृत्य एवम गीत के साथ गिन कर ताल देने वाले व्यक्तियों की विशेष योजना होती थी। ठीक इसी तरह आज भी नट संकीर्तन में नृत्य और गायन के साथ पुंग और करताल वादकों की योजना होती है। संकीर्तन की ही खुबक इशयी नामक शैली है जिसमें करताल की जगह ताली का प्रयोग किया जाता है व सब कलाकार ताल दर्शाने के लिए ताली का ही एक साथ मिलकर प्रयोग करते हैं। महाभारत काल में दृष्टिपात करने पर भी यह पता चलता है की उस समय भी गायन, वादन एवम नृत्य के साथ हाथों द्वारा ताल देने का प्रचलन था।

हाथों द्वारा ताली देकर गाते हुए खुबक इशेई का एक दृश्य

नट संकीर्तन के लिए तीन प्रकार के साज़ों का प्रयोग किया जाता है जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

मणिपुरी पुंग : यह एक स्थानीय अवनद्य वाद्य है जिसमें गाय के चमड़े का प्रयोग किया जाता है। यह दिखने में बहुत खूबसूरत होता है। इसकी आवाज ऊँची और तीखे किस्म की होती है।

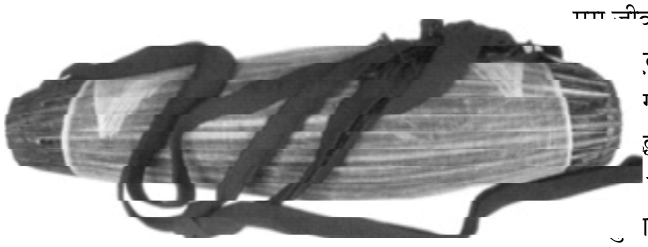

करताल : यह घन वाद्य की श्रेणी के अंतर्गत आता है और कांस्य आदि धातु का बना होता है। यह भजन कीर्तन के साथ प्रयोग होने वाली घण्टियों की जोड़ी जैसा होता है लेकिन आकार में उनसे थोड़ा बड़ा होता है।

करताल चोलोम के दौरान करताल का प्रयोग करते हुए करताल वादक—

मोईबुङ्ग : यह शंखों का जोड़ा होता है जिसको एक साथ बजाया जाता है। इन शंखों में से निकलने वाली ध्वनियाँ अक्सर षडज पंचम संवाद पेश करती हैं। नट संकीर्तन के दौरान इसका प्रयोग शुरुआत, मध्य और अंत में किया जाता है। इसकी ध्वनि नई शुरुआत, चरम उत्कर्ष, जीत एवं पूर्णता के भाव को दर्शाती है।

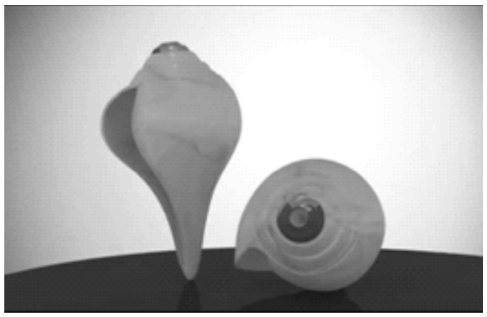

नट संकीर्तन एक सामूहिक पेशकारी होने की वजह से इसमें सब कलाकारों की अपनी विशेष भूमिका होती है। इस परंपरा के निर्वाह के लिए पुंग वादक को विशेष रूप से तैयारी करनी होती है जिसमें पुंग के रागों को बजाना और पद संचालन साथ साथ सीखना पड़ता है। इसी तरह गाने वाले गायकों को भी संकीर्तन से संबन्धित विशेष गीतय राग रस और भाव के साथ गुरुओं से सीखना अनिवार्य रहता है। ऐसे ही करताल बजाने वालों को भी नृत्य के साथ करताल वादन उचित ढंग से सीखना अनिवार्य है। अत: संकीर्तन के हर अंग में दक्षता पाने के लिए कलाकार ...जीवन समर्पित केआर देते हैं। ऐसे ही पुराने गुरुओं में श्री एन. धोजो ...ल. कोइरेंग सिंह, व. पार्थो सिंह, के अच सेलुङ्गबा सिंह, इनके ... गोंबम इबोबी सिंह, श्री बोकुलजाओ सिंह, अस. थानिल सिंह, ...द्र सिंह, वांखेम लोकेन्द्रजीत सिंह व श्री क्षेत्रिमयुम कीर्ति सिंह जी ... के क्षेत्र में विशेष योगदान है। पुंग के इलवा संकीर्तन के क्षेत्र में ...ापी सिंह, श्री के अभिराम शर्मा, श्री नारल सिंह, श्री कुबेर सिंह, श्री जोगेन्द्र सिंह, श्री चन्द्र सिंह, श्री निङ्गथौजम इतोमचा सिंह, एस. श्री कालीदमन सिंह, श्री एल. लकपति सिंह, श्रीमती यूम्लेंबम गंभिनी देवी और श्रीमती मेम्मा देवी आदि प्रसिद्ध गुरुओं और कलाकारों की विशेष भूमिका रही है।

रास लीला

रास लीला मणिपुर प्रदेश में विकसित हुई खास किस्म की नृत्य शैली है जिसको अपनी उच्च दर्जे की कलात्मकता के कारण भारत की प्रमुख शास्त्रीय नृत्य शैलियों में स्थान प्राप्त है। यह समूह में किया जाने वाला नृत्य है जिसमें हर कलाकार की अपनी अलग भूमिका रहती है। कलाकारों के चरित्रों में पहला श्री कृष्ण, दूसरा राधिका और तीसरे स्थान पे अष्टसखियों या गोपियों का स्थान रहता है जिनके नाम ललिता, विशाखा, चमपकलता, चित्रा, तुंगविद्या, इंदुरेखा, रंगदेवी और शुकदेवी के तौर पे जाने जाते हैं। गोपियों का अभिनय स्त्री कलाकारों द्वारा ही किया जाता है और कुँवारी राधा के अभिनय के लिए अविवाहित अथवा कुमारी लड़की का ही चुनाव किया जाता है। कृष्ण का अभिनय भी ज़्यादातर लड़कियों द्वारा ही किया जाता है।

विशेषताएँ

"The graceful body movements, costumes, facial expressions are controlled, direct eye contact with the audience is also prohibited."[8] शास्त्रीय नृत्य होने के कारण इस नृत्य में सूक्षम एवं कलिष्ट मुद्राएँ, पद एवं हस्त संचालन देखने को मिलता है परन्तु फिर भी इस नृत्य में मुख मुद्राओं का प्रयोग बहुत गौण या ना के बराबर ही होता है। नृत्य करते हुये कलाकारों के लिए यह आवश्यक होता है की वह दर्शकों से अपनी नज़रें न मिलाएँ व उनकी ओर ध्यान न दें इसलिए वह अपना ध्यान अपनी नाक पर ही केन्द्रित रखते हैं। जबकि अन्य नृत्य शैलियों की तुलना में इस प्रकार का नियम अपवाद स्वरूप भासित होता है परन्तु ऐसा होने के पीछे एक गूढ़ कारण है कि रास लीला का मंचन दर्शकों के मनोरंजन के लिए न होकर प्रभु को अर्पित होता है व इसे निभाने वाले कलाकारों के लिए ये ज़रूरी होता है कि वह सांसारिकता के भावों से ऊपर उठ , केवल अपने किरदार में खो जाएँ तांकि मंचन के दौरान उनके हृदय में केवल प्रभु के प्रति भक्ति के भाव ही उठें व सांसारिक मन कि मैल से दूर रहें। नृत्य करते हुये कलाकार अपने हाथों और बाजुयों को कभी भी अपनी आँखों के के स्तर से ऊँचा नहीं उठाते। पद संचालन के दौरान यह ध्यान रखा जाता है कि पहले एड़ी ज़मीन के साथ छूये उसके बाद तलवे एवं अंत में अंगुष्ठ या उँगलियों वाला भाग। मणिपुरी शास्त्रीय नृत्य में कलाकार कथक नृत्य कि भाँति कभी भी एक दिशा में मुद्रा बनाकर स्थिर रूप में खड़े नहीं होते बल्कि उनके शरीर के किसी ना किसी भाग में गतिशीलता निरंतर बनी रहती है। स्वर्गीय श्री वाडखेम लोकेन्द्रजीत जी के साथ हुई मुलाकात के दौरान उन्होंने शोधार्थी को बताया कि मणिपुरी नृत्य के हस्त एवं पद संचालन सर्प के चलन के समान निरंतर एवं घुमावदार होते हैं जिनकी शुरुआत और अंत का साधारण जन के लिए अंदाज़ा लगाना मुश्किल होता है। फिर भी रास लीला के इस दृश्य से इसमें प्रयोग होने वाली वेष भूषा एवं मुद्राओं के द्वारा हस्त और पद संचालन का अंदाज़ा लगाया जा सकता है।

वाद्य यंत्र

रास नृत्य में प्रयोग होने वाले प्रमुख वाद्य यंत्रों में मणिपुरी पुंग, बांसुरी एवं मोईबुङ्ग विशेष हैं। मोइबुङ्ग मणिपुरी में कौंच या शंखों के जोड़े को कहते हैं, इस जोड़े को एकसाथ बजाया जाता है। आधुनिक समय में संगत के लिए वाइलिन एवं इसराज का प्रयोग भी किया जाता है।

रास विधि

'सबसे पहले नुपा पला (नुपा मणिपुरी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है लड़का अथवा पुरुष और पला का अर्थ होता है कलाकार या कलाकारों कि मंडली) द्वारा नट संकीर्तन पेश किया जाता है और पुजारी द्वारा कुंज आरती की जाती है तत्पश्चात नृत्य गुरु, सूत्रधारी, बांसुरीवादक, मोइबुङ्ग वादक को फूल और चन्दन भेंट किए जाते हैं। इसके बाद सहभागियों को पान और सिरोपा भेंट किया जाता है जिसको मणिपुरी में बोरिबा कहते हैं। फिर शंख नाद के साथ पुंगवादक द्वारा राग मचा का वादन किया जाता है और इसी के साथ रास कि शुरुआत होती है। सूत्रधारी रास के लिए निर्धारित काव्य से संबन्धित राग कि शुरुआत करता है और वैष्णव वंदना का गायन करने के पश्चात वृन्दावन वर्णन करता है। इन सबके बाद अलग-अलग दृश्यों से संबन्धित गायन अलग-अलग छंदों एवं रसों में करते हुये भिन्न भिन्न तालों के प्रयोग द्वारा रास लीला का मंचन किया जाता है।'[9]

रास नृत्य पाँच प्रकार का माना जाता है महारास, कुंजरास, बसंतरास, नित्यरास और दिवरास। इन सभी प्रकारों में भगवान कृष्ण और भक्त गोपियों के आपसी प्रेम प्रसंग से संबन्धित विभिन्न लीलाओं का मंचन किया जाता है।

महारास सर्वप्रथमअस्तित्व में आया रास नृत्य का प्रकार है जिसका निर्माण राजा भाग्यचन्द्र ने स्वयं भगवान कृष्ण के दिव्य दर्शनों के बाद उनकी प्रेरणा से करवाया। इसका मंचन कार्तिक मास की पुर्णिमा के समय किया जाता है। महारास श्रीमद भागवत के रास पंचाध्याय में वर्णित घटनाक्रम को दर्शाता है जब श्री कृष्ण गोपियों के साथ रास करने के लिए तैयार हुये परन्तु गोपियों के मन में आए अभिमान के कारण श्री कृष्ण गोपियों को वहीं छोड़ श्री राधा जी को साथ ले चुपके से वहाँ से निकल जाते हैं। राधा जी को लगता है कि भगवान उनके साथ सबसे

ज्यादा प्रेम करते हैं इसलिए उनके मन में भी अभिमान आ जाता है जिसे देख भगवान श्री कृष्ण उनके पास से भी आलोप हो जाते हैं। जब सब गोपियों और राधा जी को अपनी गलती का एहसास होता है तो वह सब शोक में डूब जाती हैं उनके मन में पश्चाताप का भाव देख भगवान उनके समक्ष फिर से प्रकट होते हैं और उनके साथ महारास लीला करते हैं।

कुंजरास भी महाराज भाग्यचन्द्र की ही देन है। यह सिर्फ आश्विन महीने कि पूर्णिमा के दिन ही किया जाता है। इसमें दिखाया जाता है कि भगवान श्री कृष्ण कुंजबन में पहुँच कर वेणु वादन के द्वारा कैसे राधा एवं गोपियों को बुलाते हैं एवं रास करते हैं।

बसंतरास के आविष्कारक भी महाराज भाग्यचन्द्र ही हैं। यह नृत्य चैत्र मास की पूर्णिमा के दिन किया जाता है। इसके मंचन में वह दृश्य दिखाया जाता है जब राधा जी श्री कृष्ण जी से नाराज़ हो जाती हैं क्योंकि वह उनको मिलने का वादा करके भी पूरी रात्रि उनके पास नहीं आते और सारा समय चंद्रबली नमक गोपी के साथ बिता देते हैं व सुबह होते होते राधा जी के पास पहुँचते हैं जिस पर वह क्रोधित व नाराज़ हो जाती हैं। होली खेलने के समय जब गोपियाँ श्री कृष्ण पर भरी पड़ने लगती हैं तो श्री राधिका जी अपना क्रोध छोड़ कर उनको गोपियों से बचाती हैं। इस प्रकार उनमे नाराजगी दूर हो जाती है, क्योंकि अंदर से तो वो भगवान से प्रेम ही करती हैं जो होली के रंग उत्सव में प्रकट हो जाता है। यह एक अत्यंत ही भावपूर्ण एवं दिल को छू लेने वाला दृश्य होता है।

नित्यारास की शुरुआत महाराज चंद्रकीर्ति के समय से हुई। यह नृत्य बसंत ऋतु को छोड़ साल के सभी महीनों में किया जाता है। यह भगवान कृष्ण और गोपियों के नित्या मिलन को दर्शाता है।

दिवरास महाराज चूराचांद के समय से अस्तित्व में आया। यह नृत्य खास तौर पर बसंत से संबन्धित मास में किसी भी दिन किया जा सकता है जब भी समय और वातावरण अनुकूल लगे। दिवरास की एक खासियत ये भी है की ये दिन के उजाले में ही किया जाता है इसीलिए इसका नाम दिवरास पड़ा है।

रास लीला जैसे शास्त्रीय नृत्य की विधिवत सिखलाई दे कर इस विधा को नयी पीढ़ी तक पहुँचने में कई गुरुओं की अथक मेहनत लगी है। अत: इस नृत्य को आगे बढ़ाने में जिन महान गुरुओं का योगदान रहा है उनमे से कुछ के नाम हैं स्वर्गीय गुरु श्री टखेंचंग्बम अमुदोन शर्मा, स्वर्गीय गुरु श्री माइसनम अमूबी सिंह, स्वर्गीय गुरु श्री हाओबम अटोम्बा सिंह, स्वर्गीय श्री खाइदेम लोकेशोर सिंहए थोकचोम इबेमुबी देवी, टी अच तरुण कुमार, आर. के प्रियोगोपालसना, टी अच. सूर्यमुखी देवी आदि।

लाई हराओबा

लाई हारोबा गायन, वादन, नृत्य और बहुत सारे तांत्रिक कर्म कांडों से भरपूर मणिपुर के मैतेई समुदाय का सर्वाधिक प्रचलित पर्व है जो प्रदेश की पुरातन परम्पराओं का वाहक रहा है। प्रदेश की संस्कृति एवं मौलिकता को बनाए रखने में इसका बहुत बड़ा योगदान है। लाई हराओबा को उमंग लाई हराओबा भी कहा जाता है। उमंग का अर्थ है जंगली, लाई का अर्थ है देवता और हराओबा का अर्थ है खुशी या मनोरंजन। प्रदेश में हरियाली और जंगलों के बाहुल्य के कारण जन जातीय कबीले शुरू से ही पहाड़ी जंगलों में निवास करते आ रहे हैं इसलिए जंगल के स्थानीय देवता की खुशी प्राप्त करने व उसके मनोरंजन के लिए मनाया जाने वाला पर्व लाई हराओबा कहलाता है। वैष्णव संप्रदाय के प्रदेश में प्रवेश से पहले पुरातन समय से ही इसका प्रचालन रहा है। यह हर साल अप्रैल से मई महीने के दौरान मनाया जाता है। अलग-अलग गाँव अथवा मुहल्लों के लोग किसी एक सार्वजनिक स्थान पर मिलकर इसे मनाते हैं इसलिए मणिपुर के हर गाँव अथवा मोहल्ले में एक सार्वजनिक और खाली स्थान जरूर पाया जाता है। लाई हराओबा देवताओं को प्रसन्न कर उनसे खुशियाँ, रक्षा एवं समृद्धि के वरदान प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

विषय वस्तु

मान्यता के अनुसार लाई हराओबा में भगवान द्वारा सृष्टि का स्रजन एवं क्रमिक विकास जिसमें जीव जंतुओं एवं मनुष्य के स्रजन और जीवन की शुरुआत को गायन, वादन, नृत्य और अभिनय के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसमें आगामी पीढ़ी के लिए सम्पूर्ण जीवन से संबन्धित उच्च मूल्यों, समाजिक एवं व्यावहारिक शिक्षा छुपी होती है।

प्रक्रिया

लाई हराओबा की प्रक्रिया के दौरान हमें पुराने तांत्रिक कर्म कांड देखने को मिलते हैं जिनका निर्वाह बहुत सारी परंपरागत रस्मों में किया जाता है जैसे की आरम्भ में इकोऊबा की रसम से लाई हराओबा की शुरुआत की जाती है। मणिपुरी भाषा में इ का अर्थ है पानी और कोऊबा का अर्थ है निकालना या खींचना परन्तु इसका अर्थ पानी निकालना नहीं बल्कि यह एक प्रतीकात्मक रस्म होती है। जल को जीवन का स्रोत माना गया है और 'इकोऊबा की रस्म द्वारा परमात्मा की जीवनीय शक्ति को जल स्रोत में से निकालकर लइयोम में स्थापित कर लिया जाता है जिसे इहाइफ़ु में रखा होता है। लइयोम का शाब्दिक अर्थ है फूलों का गुछा परन्तु इसमें फूल न होकर लाइरान्थ्यी पौधे की कलियाँ होती हैं। इहाइफ़ु मिट्टी का बना हुआ अंडाकार बर्तन होता है जिसमें लइयोम स्थापित किया जाता है।'[10] परमात्मा की इस जीवनी शक्ति को हासिल करने के लिए बहुत सारे लोगों का हुजूम पूरे विधि विधान एवं अनुशासन का पालन करता हुआ किसी भी नजदीकी जल स्रोत के पास जाता है जो कि कोई नदी, पुखरी या तालाब हो सकता है। इस हुजूम का नेत्रतित्व माइबा और मईबी के द्वारा किया जाता है। माइबा और माईबी असल में स्थानीय पुजारी की भूमिका निभाते हैं। इन्हीं के निर्देशन में ही लाई हराओबा की सभी रस्में निभाई जाती हैं। जल स्रोत पर पहुँचकर माईबी मंत्र उच्चारण द्वारा परमात्मा की जीवनी शक्ति का आहवाहन कर एक धागे के ज़रिये उसको पानी में से खींच कर उसे लइयोम में स्थापित कर देती है और पेना (स्थानीय तंत्री वाद्य यंत्र) की निरंतर चलती ध्वनि के साथ सारा

काफिला लाई हराओबा वाले निर्धारित मैदान में वापिस आ जाता है। यहा पर देवता लाइनिङ्गथौ और देवी लाइरेम्बी की मूर्तियाँ पहले से ही स्थापित कर दी जाती हैं। इस चित्र में लाइयोम को लेकर अनुशासनमई ढंग से आता हुआ हुजूम कुछ इस प्रकार का दिखाई देता है—

आने के बाद माइबा और माईबी विधिपूर्वक लइयोम में से धागे को देवी और देवता की नाभि से छूआ कर परमात्मा की जीवनी शक्ति को मूर्ति में स्थापित कर देते हैं। अगली सुबह पेना वादक यकाइबा नामक गायन से देवताओं को जगाता है। माईबी मंत्र उच्चारण करती है और माइबा देवी देवता को अन्न भेंट करता है। फिर दोपहर के समय मैदान के दक्षिण पश्चिमी कोने में माइबा पेना वादक और ढोल वादक के साथ मिलकर सृष्टि निर्माण की क्रिया का वर्णन करता है। माईबी लाइबौ नृत्य की तैयारी करती है। लाइबौ ऐसी क्रिया है जिसमें माईबी हाथों एवं उँगलियों की भिन्न भिन्न मुद्राओं द्वारा जीव के शरीर की माता के गर्भ में होने वाले स्रजन के क्रमिक विकास से लेकर भौतिकी संसार में जन्म लेने तक की प्रक्रिया को दर्शाती है। बच्चा जब बड़ा होता है तो उसकी सांसारिक जरूरतों की पूर्ति हेतु की जाने वाली क्रियाओं को भी नृत्य, पेना आदि के साथ गा बजा कर दर्शाया जाता है। जैसे की बच्चे के व्यसक होने पर उसकी घर की जरूरत की पूर्ति को दर्शाने के लिए भवन निर्माण की विधि को माईबी नृत्य के द्वारा प्रस्तुत करती है। इस प्रकार जीवन और सृष्टि के विकासक्रम आदि की सब क्रियाओं को भिन्न भिन्न गायन, वादन और नृत्य के द्वारा प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसी शृंखला में आगे चलकर पंथोईबी नृत्य पेश किया जाता है जिसमें पंथोईबी देवी और नोङ्गपोक निङ्गथौ की प्रेम कहानी को दर्शाया जाता है। सांगीतिक दृष्टिकोण से लाई हराओबा अनेकों प्रकार के नृत्यों की शृंखला का निर्वाह है जो कुछ इस प्रकार हैं—

थौगल जगोई : यह नृत्य पुरुष एवं स्त्रियों द्वारा मिल कर किया जाता है, जो मनोरंजन के दृष्टिकोण से मंच प्रदर्शन के तौर पर भी प्रदर्शित किया जाता है।

माईबी जगोई : यह नृत्य पुजारन माईबी के द्वारा किया जाता है जिसमें वह अपने हाथों की उँगलियों के बीच में लाइङ्गथरे के पत्तों को पकड़कर लाइसिंग जगोई और लाइसेम जगोई नामक नृत्य करती है।

लाइबौ जगोई : इस नृत्य में 364 हस्त मुद्राओं के क्रम द्वारा ब्रह्मांड को दर्शाया जाता है।

हाकाङ्गसाबा : इसमें 64 प्रकार की हस्त मुद्राओं के क्रम द्वारा मानवीय शरीर के निर्माण की प्रक्रिया को दिखाया जाता है।

अंगम उननाबा : इसमें 40 प्रकार की हस्त मुद्राओं के क्रम द्वारा बच्चे के जन्म लेने की प्रक्रिया को दर्शाया जाता है।

युमसारोल या युमसाबा : 44 प्रकार की हस्तमुद्राओं के क्रम का प्रयोग कर के मकान बनाने की प्रक्रिया को दिखाया जाता है।

पंथोइबि जगोई : यह पार्वती स्वरूपा नायिका के द्वारा किया जाने वाले नृत्य के तौर पर जाना जाता है।

पनिंलोन जगोई : इस नृत्य में 39 तरह की हस्त मुद्राओं के क्रम द्वारा कपास या रूई बनाने की प्रक्रिया को दर्शाया जाता है।

फिसारोल जगोई : इसमें 146 तरह की हस्त मुद्राओं के क्रमिक प्रयोग से कपड़ा बुनने की क्रिया को प्रकट करते हैं।

लोंगखोल जगोई : इसमें 9 प्रकार की हस्त मुद्राओं के क्रम द्वारा मछ्ली पकड़ने की क्रिया को दर्शाया जाता है।

पातोन जगोई : इसमें 2 तरह की हस्त मुद्राओं के द्वारा फसल की कटाई को दिखाया जाता है।

फिबुल जगोई : इसमें 6 तरह की हस्त मुद्राओं के क्रम द्वारा गेंद के साथ खेले जाने वाले खेल को दर्शाया जाता है। आदि।'[11]

'क्षेत्रीय भिन्नता के कारणलाई हराओबा चार प्रकार का माना जाता है; कंगलेई हराओबा, मोइरांग हराओबा, चकपा हराओबा, और काकचिंग हराओबा।'[12]

भले ही गीतों का गायन हो या नृत्य की संगत ; प्रदेश में प्रचलित स्थानीय लोक वाद्यों का ही प्रयोग किया जाता है। इन लोक वाद्यों में सबसे महत्त्वपूर्ण वाद्य यंत्र पेना है। लाई हराओबा में इसका महत्त्व सबसे ज्यादा है अत: पेना की जानकारी होना सांगीतिक दृष्टिकोण से भी बहुत जरूरी है जो कुछ इस प्रकार है—पेना प्रदेश का सर्वाधिक लोकप्रिय साज़ है। यह मणिपुरी लोकधारा और परंपरागत संगीत की पहचान के तौर पर स्थापित एक महत्त्वपूर्ण और पुरातन वाद्य यंत्र है। इसकी बनावट एकतारे अथवा पंजाब में पाये जाने वाले लोकसाज तुम्बी के जैसी होती है और आकार में भी लगभग ये उतना ही होता है।'इसमें तार की जगह घोड़े की पूंछ के बालों से निर्मित रस्सीनुमा तार का प्रयोग किया जाता है। इसको एक प्रश्न चिन्ह जैसे खास आकार के, घुंघरू लगे हुये गज के साथ बजाया जाता है। इस गज में भी घोड़े की पूंछ के बालों का ही प्रयोग किया जाता है।'[13] पेना वाद्य दिखने में प्राचीन रावणहत्थे के समान नज़र आता है और कुछ इस प्रकार का दिखाई देता है—

पेना एक खास किस्म की ध्वनि पैदा करता है जो ऐसी प्रतीत होती है जैसे मधुमाखियाँ भिनभिना रही हों। यही धुन मणिपुर प्रदेश और मणिपुरी संगीत की पहचान के तौर पर प्रचलित है।' संगीत में मणिपुरी रंग पेना की ध्वनि से ही आता है। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में प्रचलित दस थाटों के समान ही पेना वादन की 7 प्रकार की धुनें प्रचलित थी जिनमें समय के साथ साथ दो और धुनों के मिल जाने से इनकी गिनती 9 हो गयी। पेना के द्वारा स्वर और लय एक साथ उत्पन्न किए जाते हैं। इसे बजाते हुये विशेष प्रकार का झटका देकर लय दर्शाई जाती है। इसीलिए पेना के 9 प्रकारों के नाम उनमें प्रयोग होने वाली अलग-अलग लयकारियों के आधार पर ही रखे गए हैं। सनामही धर्म के परिवर्तन के कारण पुराने रस्मी संगीत में भी कमी आई और संकीर्तन के प्रचार के बढ़ने से संगीत और वाद्यों में भी परिवर्तन हुये परंतु फिर भी संगीत का प्रादेशिक रंग कायम रहा जिसमें पेना की सजावट बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। धर्म के बदलने से वैष्णव वाद के प्रभाव के कारण पेना युक्त संगीत कहीं पीछे रेह गया। अल्प प्रयोग के कारण यह केवल मैतेई रस्मों रिवाज़ों के दृष्टिकोण से या तो राजमहल तक सीमित हो गया या कथा वाचन (ballad singing) में तब्दील हो गया।'[14] पेना का प्रयोग लाई हराओबा के अलावा जन्म, मरण, विवाह आदि बहुत सारे अवसरों पर उनसे संबन्धित गीत गाने के लिए किया जाता है। पेना वादक की एक अलग किस्म की वेषभूषा होती है। शुद्ध गायन के रूप में पेना वादक परम्परागत गाथाएँ, मिथिहसिक किस्से, कुदरती नज़ारों और प्रदेश में प्रसिद्ध दंत कथाओं का ही गायन करते हैं। वर्तमान में पेना के साथ गए जाने वाले गीतों में लाई हाइराओबा के गीतों के अलावा खम्बा थोईबी की गाथा और खोङ्गजोम पर्व का गायन विशेष है।

पेना वाद्य को भावी पीढ़ी तक पहुँचने और सीखने में पेना में दक्ष गुरुओं एवं कलाकारों का बहुत मत्वपूर्ण योगदान रहा है जिनमे से कुछ गुरुओं के नाम हैं; स्वर्गीय ओझा ए इबोमचा सिंह, टी अच. निङ्गथेमजाओ सिंह, के अच. मंगी सिंह. एल. याइमा सिंह इत्यादि।

उपसंहार

मणिपुर में प्रचलित तीनों संगीत विधाओं; रास लीला, नाट संकीर्तन और लाई हराओबा के बारे में प्राप्त जानकारी के आधार पर ये कहा जा सकता है की इन तीनों ही संगीत प्रकारों का संबंध लोकमनोरंजन से न होकर भगवान के प्रति समर्पण भाव से है। जिनमे से रास लीला और नाट संकीर्तन में सीधे रूप में रागों का प्रयोग पाया जाता है व इनकी पेशकारी करने के लिए गुरुओं से इनकी शिक्षा व दीक्षा विधिपूर्वक लेनी पड़ती है। जब की लाई हराओबा में ऐसा नहीं है। इसमें माइबा और मईबी केउचित मार्गदर्शन में जन साधारण भी अपनी भूमिका अदा करते हैं। हालांकि जिस प्रकार के करम कांड और अनुशासन के दर्शन हमे रास लीला और नट संकीर्तन में होते हैं वैसा ही अनुशासन और नियमों के पालन की अनिवार्यता लाई हराओबा में भी देखि जा सकती है। परंतु इसमें शास्त्रीय रागों के प्रयोग का व्यवधान नहीं है बल्कि लाई हराओबा के नियम तांत्रिक करम कांडों पर आधारित होते हैं। लाई हराओबा के कुछ हिस्सों में साधारण जन भी भाग ले सकते हैं जब की नाट संकीर्तन और रास लीला में ऐसा नहीं कर सकते। यही कारण है की नट संगीत और रासलीला करने वालों को कलाकार की उपाधि दी जाती है जेबी की लाई हराओबा पेश करने वालों को कलाकार नहीं कहा जाता। हालांकि लाई हराओबा में किए जाने वाले नृत्यों के कुछ प्रकारों को कुछ कलाकार मणिपुरी संस्कृति की झलक के तौर पर दक्षता पूर्वक निभाते व पेश करते हैं जिसका उदेश्य अपनी संस्कृति को दर्शना और मनोरंजन करना होता है। अत: पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से नयी पीढ़ी की अपनी संस्कृति के प्रति जिज्ञासा कम होती जा रही है, इसलिए इन कलाओं के संरक्षण हेतु सरकारों और काला प्रेमियों को अधिक प्रयास करने की जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. http://timesofindia.indiatimes.com/india/Manipuri-Sankirtana-enters-Unesco-cultural-heritage-list/articleshow
2. E. Nilkanta Singh, "Manipuri Nata Sankirtana: Rituals and Philosophy", *Manipuri Literature*, October 2011, vol-vi, p. 67.
3. Shruti Bandhopadhay, Manipuri Dance : an assessment on History and Presentation, Shubhi Publications, Gurgaon, Edition 2010. p. 153.
4. E. NIlkanata Singh, *Aspects of Indian Culture*, *Manipuri Literature*, October 2011, vol-vi, P. 64.
5. Devinder Kaur, Sangeet Roop vol-3, Anmol Publications, New Delhi, Edition 2009, P. 2.
6. https://hi.wiktionary.org/wiki, accessed on June 6, 2019, 10.00 Am
7. Jatra Singh, Encyclopaedia Of Manipur, p. 493
8. Article, Dr. Yumlembam Gopi Devi, "Raas leela: origin, Philosophy And Performance Tradition Of Manipur", Facets of Manipuri Culture, P. 72.
9. Haobam Ibochaoba, The Pre World War-II Form of Ras Leela, H. O. Shantibala Devi Uripok, Imphal, Edition 2009, P. 48.
10. R.K Danisana, Manipuri Dances, Rajesh Publications, New Delhi, 2012, p. 6.
11. Shruti Bandhopadhay, Opcit : p. 82.
12. Article, Ngangbi Chanu, "Significance Of the Rituals In Lai Haraoba", Facets of Manipuri Culture, P. 78.
13. Article Makhonmani Mongsaba, "Pena Music and Performance of Phamshak", Journal Manipuri Culture and Literature, January 2015, Vol VII, P- 77.
14. Personal interview conducted with shree N.Tiken on 15 /9/2018 at Progressive Artist Laboratory.